आठ तारे

1591

The Bharat Stores,
BOOK SELLERS & PUBLISHERS
ERNAKULAM.

138

K. N. KARTHA

It is good book

आठ तारे

MUNAVVIRUL ISLAM HIGH SCHOOL
Date 1591.
ERNAKULAM.

K. NARAYANAN KARTHA
B. Sc. R. B. VISARAD,
MAHATMA GANDHI COLLEGE, TRIVANDRUM.

SOLE DISTRIBUTORS
HINDI BOOK STALL,
TRIVANDRUM.

1950

Rights reserved

It is a good Book

॥ आठ तारे ॥

विषयसूची

१. पि० सि० राय

२. महाकवि जम्बूल

३. ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

४. महाराज पृथ्वीराज

५. झांसी वाली राणी

६. मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

७. महात्मा मार्क्स

८. हैदर अली

that is a good book

॥ आठ तारे ॥

सर पि० सि० राय

भारत में ऐसा एक भी शहर न होगा जहाँ बंगाल केमिकलस कंपनी की विविध देशी सामान बिकने वाली दूकान न हो। इस कंपनी में विदेशी औषधियों के समान कई प्रकार की औषधियों का निर्माण होता है। तरह तरह के साबून भी बनते हैं। इसके स्थापक सर पि० सि० राय का नाम भारत के कोने कोने में प्रसिद्ध है। उनका पूरा नाम प्रफुल्लचन्द्रराय है।

पि० सि० राय ने सन् १८६१ में जन्म लिया। स्थान बंगाल का छोटा—सा गाँव था।

पिता हरिश्चन्द्रराय लोकप्रिय और सर्वकलावल्लभ थे। उन्होंने अपने अथक प्रयत्न से एक मदरसा खोला था जिस में राय ने प्रारंभिक शिक्षा पायी। ऊँची शिक्षा पाने केलिये कलकत्ता की पाठशाला में वे भर्ती किए गये। उस समय वे बीमार पड़े। दो साल के बाद ही वे चंगे हो सके। अतः पढ़ाई बीच में खतम करके अपने घर लौटे। घर में बैठ कर उन्होंने अपने पिताजी की अनगिनत पुस्तकें पढ़ीं।

फिर आलबर्ट हैस्कूल में राय अध्ययन करने लगे। पढ़ने में उनकी रुचि तथा सामर्थ्य देखकर अध्यापकगण दंग रह गये। न्यूटन, बेंजमिन फ्रांक्लिन आदि महानों की जीवनियाँ पढ़ने में वे खास दिलचस्पी लेते थे। जब समय मिलता तब बंगला भाषा की पुस्तकें पढ़ते थे और वे उस के बड़े विद्वान भी बन गये। प्रासिद्ध लेखक बंकिमचन्द्र का विषवृक्ष नामक उपन्यास उन्होंने बड़े चाव से कई बार पढ़ा था।

पि० सि० राय सभा समाजों में बड़े ज़ोर से व्याख्यान भी देते थे। ब्रह्म समाज के स्थापक केशवचन्द्रसेन के यहाँ जाकर भाषण सुनते और उनके उपदेश के अनुसार समाज की सेवा करने में अपना समय लगाते थे।

स्कूल की पढ़ाई के बाद कालेज में शामिल हुए। वहाँ के बड़े सैन्टीस्ट प्रोफसर सुरेन्द्रनाथ बानर्जी से उनकी घनिष्ठता बढ़ी। रसायन विद्या के पंडितों के भाषण सुन कर उस विद्या में उनका मन लग गया। लबोरटरी में वे दिन-रात काम करने लगे। रसायन शास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करने केलिए वे बिलायत गये। परीक्षा में सर्व प्रथम निकलने के कारण सरकार की ओर से उन्हें छात्रवृत्ति मिली।

एडिनबरो नगरी में जाकर राय ने छः वर्ष पढ़ा। बि० एस० सि० की उपाधि पाने के बाद वे

घर लौटे। विलंब बिना किए सरकार ने कलकत्ता प्रसिडन्सी कालेज के प्रोफसर का स्थान उन्हें प्रदान कर दिया। कालेज में काम करते समय वे सहप्रवर्तक और विद्यार्थियों के प्रिय बन गये। दीन-दुखियों की सेवा वे सर्वदा करते थे। "मेरकूरस नैट्रैट" का आविष्कार सब से पहिले उन्होंने ही किया जिस से संसार भर में उनकी कीर्ति फैल गयी। सब उनकी तारीफ़ करने लगे।

पि० सि० राय ने अपने लोगों के मन में रसायन विद्या के प्रति शौक पैदा करने का तीव्र यत्न किया। लोगों की सेवा करने के इरादे से वे विदेश गये और औषधियाँ बनाने के कई कारखानों का निरीक्षण किया। फिर अपने देश में आकर एक कंपनी स्थापित की। कहा जाता है कि शुरू में उस कंपनी का मूलधन केवल आठ सौ रुपया था। लेकिन कुछ साल के बाद वह कंपनी बहुत बड़ी बन गयी। इसका कारण पि० सि० राय का कर्म-वैभव तथा प्रतिभा के अलावा और कुछ नहीं।

डा० राय ने रसायन शास्त्र संबन्धी ग्रन्थों के अलावा सामाजिक और राजनैतिक ग्रन्थों की भी रचना की है। उनके समान वक्ता, ग्रन्थकार और शास्त्रज्ञ मिलना कठिन है। बच्चों पर वे बहुत प्यार रखते थे। पराये दीन बालकों को वे अपने बच्चों के समान मानकर उनकी सेवा करते थे और उनकी पढ़ाई केलिए काफ़ी मदद देते थे। धार्मिक विरोध ने उनके मन में प्रवेश भी न किया था। वे समझते थे और कहा करते थे कि आदमी सब भगवान की सन्तान हैं, भगवान सब की रक्षा करता है। अतः आपस में झगड़ना महज़ बेवकूफ़ी है।

सन् १९४४ जून महीने में उनकी मृत्यु हुई। उस समय उनकी उम्र ८३ वर्ष की थी। उनकी मृत्यु बड़ी दुखद घटना है। लेकिन कौन टाल सकता है ?। उन्होंने जो मार्ग दिखाये हैं उनपर चलना ही हमारा फ़र्ज़ है।

Aravindan.

महाकवि जंबूल

साधारणतः कवि प्रत्येक युग की जनता की रहन-सहन, समाज–व्यवस्था आदि के बारे में अपनी अमर वाणियों के द्वारा लोगों को समझाते हैं। इतिहास तो युग के बाहरी रूप को समझा देता है। कविता आंतरिक रूप का वर्णन करती है।

हिन्दी भाषा के गद्य साहित्य के जनयिता श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे भारत के कोने कोने में प्रसिद्ध हैं वैसे महाकवि जंबूल ने रूस में प्रसिद्धि पायी है। दुष्ट बादशाह ज़ार के अत्याचार से पीडित होकर लोग एकत्रित हुए और कई प्रकार के कष्ट झेलकर अंत में उसका काम खतम कर दिया। लोगों की उस

समय की हालत बहुत बुरी थी। उनकी बिगडी हुई अवस्था को सुधारने का प्रयत्न, समाज-सुधारक, उदार, प्रतिभाशाली कवि जंबूल ने जैसा किया वैसा भारत के कवि करेंगे तो हमारा भारत स्वर्ग समान होगा।

जंबूल के पिता बड़े ग़रीब थे। रहने के लिए स्थायी घर नहीं था। इधर उधर चलते फिरते अपने परिवार के साथ वे जीवन बिताते थे। सन् १८४६ में जम्बूल का जन्म हुआ। पिता को अपने दुधमुँह बच्चे को लेकर इधर उधर मारा मारा फिरना पड़ा। कहा जाता है कि जम्बूल के माँ-बाप एक दिन एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे थे। चलते चलते थक गये। रात हुई तो जम्बूल नामक एक पहाड़ के पास उन्होंने डेरा डाला। उसी दिन पुत्र का जन्म हुआ। ज़म्बूल पर्वत के निकट जन्म लेने के कारण पिता ने अपने नवजात शिशु का नाम

जम्बूल रखा। जम्बूल पहाड़ कज्ज़ाकिस्तान नामक प्रान्त में स्थित है। वहाँ की प्रकृति बहुत सुन्दर है। समथल होने के कारण गाय-बैलों को चरने केलिये काफ़ी सुविधाएँ हैं।

ज़ार के ज़माने में ज़मीनदार, पटेल आदि लोग बेचारे किसानों को तरह २ के कष्ट देते थे। लेकिन जब ज़ार का पतन हुआ तो उनकी दशा दिन दिन सुधरने लगी। ज़मीन्दारों के हाथों जम्बूल और उनके लोगों को जितनी तकलीफें झेलनी पड़ीं उनका वर्णन कवि ने भली-भान्ति किया है।

बड़े तड़के जम्बूल गाय-बैलों को लेकर उन्हें चराने निकलते थे। खुला मैदान हरी-भरी घास कल-कल करती हुई नदियाँ आदि का अपूर्व सौन्दर्य देख कर जम्बूल का मन मुग्ध होता था। समतल है, उपजाऊ भूमि है। प्रकृति ने सारी सुविधाएँ दी हैं।

तोभी वहाँ की जनता नारकीय जीवन बिताती थी। यह देख कर जम्बूल को बहुत दुःख होता था।

किशोरावस्था में अपने चाचा जी से कवि ने गीत गाने का अभ्यास किया। उनकी सुमधुर गान-लहरी में सारा मैदान नाच उठता था। ज्यों ज्यों उनकी आयु बढ़ने लगी त्यों त्यों उनके विचार भी गंभीर होने लगे। उन्हें दूसरों के गीत कंठस्थ करके गाने में एक प्रकार की ग्लानि होने लगी। धीरे धीरे वे स्वयं गीत रचने लगे। उनके गीत सुनकर गरीब किसानों के मन में नया उत्साह उमड़ने लगा। उन्होंने अपनी हीनावस्था किसानों को सुमधुर सुन्दर सुकोमल गानों द्वारा परिचित करायी।

कुछ दिन के बाद उन्होंने सोचा कि किन्हीं महाशय से दीक्षा लेनी चाहिए। उन्होंनें पहिले सुन रखा था कि सुगोम्बाई नामक प्रसिद्ध कवि अपने

गाँव से कुछ दूर रहते हैं। उनकी सरस और सुन्दर कविताएँ गा गाकर जम्बूल आनन्द सागर में डूब जाते थे। एक दिन गुरु की खोज में वे निकले। बहुत दूर से गुरुवर्य का घर दिखाई पड़ा। उत्तम शिष्य जम्बूल एक सुन्दर गीत बड़ी तन्मयता से गाते हुए गुरु के घर के पास पहुँचे।

इधर गुरु किसी मीठे गान का स्वर सुन उसकी ओर कान लगाये बैठे थे। घर में प्रवेश करने के पहिले ही गुरु बाहर आये और बड़े आनन्द के साथ नवागत का स्वागत किया। आपस में कुशलप्रश्न किये। जम्बूल ने अपनी बातें कह सुनायीं। जम्बूल की भक्ति देखकर गुरु बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देकर अपने प्यारे शिष्य को बिदा किया।

धीरे धीरे बिजली की गति के समान जम्बूल का नाम सारे देश में फैलने लगा। उन्होंने अपनी

कविताओं में दीन, गरीब और दुःखी भाइयों की कष्ट-कथाएँ तन्मयतापूर्वक लिखीं। उन्हें पढ़ कर अपनी वर्तमान स्थिति के बारे में लोगों को मालूम हुआ। जो उनको दुःख देते थे उनका अंत करने की कसम लोगों ने खायी। महाकवि ने अपने उपदेशों से लोगों को एकीत्रत किया। वे इस प्रकार उपदेश देते थे "प्यारे भाइयो! यदि हम प्रयत्न करें तो सारा काम हम कर सकेंगे। कोई भी हमारे विरुद्ध खड़े होने का साहस न करेगा। सब एकता पर निर्भर है। हमारी इस बुरी हालत का कारण बादशाह है। वह हमारा नाश हमेशा कर रहा है और यही वह चाहता है कि हम जन्म भर उसके गुलाम रहें। यह कभी नहीं हो सकता"। ये उपदेश सुनकर जनता बादशाह के खिलाफ़ खड़ी हुई।

भारत के देशी नरेशों के दरबारों में अनेक कवियों को उन्नत स्थान दिये जाते थे। उनका यही

काम था कि सर्वदा वे अपने राजाओं की प्रशंसा करते रहे। उसी प्रकार ज़ार के दरबार में कई कवि थे। बादशाह के लोगों ने सुना कि जम्बूल एक बडा कवि है, कविता करने में उसकी निपुणता तारीफ़ करने लायक है और बह अच्छी तरह गा भी सकता है। तुरन्त ज़ार ने कवि को अपने दरबार में बुला लाने का हुक्म दिया। किन्तु आनेवाला कौन ? उन्होंने यह उत्तर दिया—"मैं अपने गरीब भाइयों की सेवा में रहना चाहता हूँ। मुझे राज दरबार में आने की इच्छा ज़रा भी नहीं"। राजकर्मचारियों ने जम्बूल को सर्व श्रेष्ठ स्थान दिलाने का प्रलोभन दिया। लेकिन कवि ने उस से साफ इनकार कर दिया। इस घटना के बाद बादशाह के लोग उन्हें डराने धमकाने लगे। साहसी तथा धीर कवि ने उन सब की परवाह नहीं की।

सन् १९१३ में ज़ार ने अपनी हुकूमत का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। रूस भरके सब कवियों को ज़ार के वंश के बारे में कविताएँ रचने को राजधानी में बुलाया। युवकवि जम्बूल को भी न्योता मिला। किंतु वे वहा गय नहीं। इससे ज़ार बहुत बिगड़े और जम्बूल को दरबार में हाज़िर करने की आज्ञा दी। वे दरबार में लाय गय। बादशाह की निंदा करने के कारण पुलीस ने सहृदय, सरल, साधु कवि को बुरी तरह पीटा। पर दृढव्रत कवि अपनी प्रतिज्ञा पर अटल खड़े रहे। कुछ समय के बाद वे छोड़ दिये गये।

धीरे धीरे जम्बूल की आयु बढ़ने लगी। आँखों की चमक क्रमशः कम होने लगी। उनकी बुलन्द आवाज़ कमज़ोर हुई। लाठी का सहारा लेना पड़ा। इतना होने पर भी उनके गीतों में यौवन की बहार थी, उत्साह की हवा चलती थी। उनकी वाणियाँ आशा तथा उमंग से भरी हुई थीं।

ज़ार के अत्याचारों के बारे में जम्बूल की कविताएँ पढ़ कर लोग उत्तेजित हो उठे। सब ने मिलकर बादशाह का अंत करने का निश्चय किया। चारों ओर विद्रोह का आरंभ हुआ। उसका दमन करने के लिये ज़ार ने बड़ी कोशिश की। नतीजा यह निकला कि ज़ार और उसके वंशजों को मार कर उनके स्थान पर लोगों के प्रतिनिधि सुशोभित हुए। वे अपने लोगों की उन्नति के काम करने लगे। जनता स्वर्ग-सुख का अनुभव करने लगी। उन्होंने जम्बूल का बड़ा आदर किया। आदर के उपलक्ष्य में सरकार और जनता दोनों ने मिलकर महाकवि को स्टालिन पुरस्कार दिया। कहा जाता है कि राज्य के सर्व प्रथम उत्तम व्यक्ति को ही यह पुरस्कार दिया जाता है।

इस प्रकार कुछ दिन आनन्दपूर्वक बीते कि दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। जर्मनों ने रूस पर आक्रमण किया। अपनी प्यारी जन्म-भूमि को आफ़त

में पड़ी देख कर जम्बूल का मन अशान्त हुआ। तुरन्त गली गली जाकर उन्होंने लोगों को धीरज दिया। उनकी सोवियत सिपाही, अपील, मास्को आदि कविताएँ महत्वपूर्ण हैं। यदि जम्बूल अपनी गम्भीर सरस तथा मार्मिक कविताओं से लोगों को उत्तेजित न करते तो वे युद्ध में विजयी न हो सकते। सरकार ने अतीव प्रसन्न होकर उन्हें सर्वोच्च स्थान दिया। चारों ओर उनकी कीर्ति फैलने लगी। किंतु दुःख की बात है, सन् १९४५ जून में उनकी मृत्यु हुई। इस धरातल पर जब तक रूस राज्य तथा रूस जनता रहेग तब तक महाकवि जम्बूल की बड़े आदर से सब याद करेंगे।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

भारत माता के सुपुत्रों में एक हैं ईश्वर चन्द्र विद्यासागर । उन का जन्म बंगाल प्रान्त के मेदिनीपुर ज़िले के एक छोटे से गाँव में हुआ था । एक ग़रीब किन्तु उत्कृष्ट वंशज ब्राह्मण थे उनके पिताजी । पुत्र जन्म के पहिले माँ-बाप की जन्म-कुण्डली देख कर ज्योतिष्यों ने कहा था कि उनके एक दिव्य पुत्र पैदा होगा । माँ गर्भवती हुई । पुत्र के पैदा होने के कुछ दिन पहिले ही से माता पागल हो गयी । सब को बड़ा दुःख हुआ । पिता भगवान के जप में सारा समय बिताने लगे । कहा जाता है कि विद्यासागर के जन्म के बाद माता

का पागलपन दूर हुआ और वह पहिले के समान स्वस्थ हुई। वे अपने दादाजी की देख-रेख में पलने लगे। दादाजी का नाम था रामजयतर्कभूषण। वे बड़े योगी भी थे। उन्होंने पौत्र की शिक्षा-दीक्षा आदि का भार अपने ऊपर लिया। पिताजी ठाकुर दास बड़े गरीब थे। वे अपनी छोटी सी अवस्था में ही अपना घर छोड़ कर कलकत्ता गये थे। वहाँ जाकर तर्कशास्त्र पढ़ना आरंभ कर दिया। जब उनको मालूम हुआ कि अंग्रेज़ी पढ़ने से अच्छी नौकरी मिलेगी तब से एक महाशय के यहाँ जाकर अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। लेकिन खाने पीने का उपाय न देख पड़ा। कुछ दिन तक अपनी पढ़ाई जारी रखी। बिना खाये पिये उन्हें कई दिन रहना पड़ा। अपने चेले की दीनावस्था जानकर उनके अध्यापक ने उन्हें अपने यहाँ रखा। अध्यापक को काफ़ी आमदनी न होती थी। अतः वे कभी बड़ी तंगी

से दिन बिताते थे। एक दिन उन्हें खाने को कुछ नहीं मिला। घूमते घूमते एक विधवा की दूकान के पास जाकर खड़े हो गये। सिर चक्कर खाने लगा। विधवा की दृष्टि उनपर पड़ी। तुरन्त पानी मंगाकर पिलाया। सारी बातें समझने के बाद उस दयामयी विधवा-ने उनसे प्रतिज्ञा करायी कि जिस दिन भोजन न मिले उस दिन तुम्हारे यहाँ मैं आऊँगा ही। इस तरह की तकलीफ़ें उठाकर ठाकुरदास अपने दिन बिताने लगे। कुछ दिनों के बाद उन्हें दो रुपये मासिक पर एक नौकरी मिली।

ईमानदार होने के कारण ठाकुरदास पर उनके मालिक बहुत प्रसन्न हुए। कुछ समय के बाद उनको दूसरे स्थान पर आठ रुपये महीने की एक नौकरी मिली। यह खबर पाकर उनके घर के लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। चौबीस वर्ष की अवस्था में ठाकुरदास का ब्याह गोघाट

निवासी रमाकान्त की तीसरी कन्या भगवती देवी के साथ हो गया। उस देवी के गर्भ से विद्यासागरजी का जन्म हुआ। उस दिन से उनके घरवालों को सब तरह से संतोष और सुख प्राप्त होने लगा। बालक विद्यासागर सब के दुलारे थे। अतः उनकी अदम्य प्रकृति और भी स्फूर्ति को प्राप्त हुई। उनके उत्पात से घरवाले और पड़ोसी बड़े तंग आ गये थे। यह देख कर बालक को पढ़ाने के लिए पास की पाठशाला में भेजा। गुरुजी ने अपने शिष्य की तीक्ष्ण-बुद्धि देखकर थोड़े समय में बहुत पढ़ाया। आठ वर्ष की उम्र में विद्यासागर ने वहाँ की शिक्षा समाप्त कर दी।

ईश्वरचन्द्र की बाल-सुलभ चपलताओं के बारे में कई कहानियाँ कही जाती हैं। वे बड़े उपद्रवी थे। एक दिन की घटना है। उनके घर के पास एक घाट था। लोग कपड़े धोकर फैलाते थे तो वे किसी तरह उन्हें अशुद्ध कर

डालते थे । धान के खेत के पास चलते कुछ कच्चे धान उखाड़ लेते और उस में से कुछ खाकर सब इधर उधर फेंकते थे । एक बार जौ की बाली उनके गले में अटक गयी थी, जिससे वे बिलकुल मृतप्राय हो गये थे। उनकी दादी ने उँगली डालकर गले से बाली निकाली तब जान बची । इसी तरह और भी अनेक उपद्रव करने में उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़े थे ।

बहुत उपद्रवी होने पर भी लिखने-पढ़ने में ईश्वरचन्द्र खूब मन लगाते थे । गुरुजी जो कुछ सिखलाते थे उसे बड़े ध्यान से थोड़े समय में सीख लेते थे । गुरुजी अकसर तीसरे पहर और लड़कों को विदा करके केवल ईश्वरचन्द्र को अपने पास रखते और बहुत सी बातें सिखाते थे । अधिक रात हो जाती तो वे आप ईश्वरचन्द्र को गोद में लेकर उनकी दादी के पास पहुँचा जाते

थे। एक दिन गुरुजी ने विद्यासागर के पिता से कहा— यहाँ की पाठशाला में जो कुछ पढ़ाया जाता है सो सब ईश्वर ने पढ़ लिया। यह अक्षर बहुत सुन्दर लिखता है। इसको कलकत्ता ले जाकर अंग्रेज़ी की शिक्षा दिलाना अच्छा होगा।

गुरुजी के उपदेश के अनुसार ठाकुरदास अपने पुत्र को कलकत्ता ले गये और वहाँ के संस्कृत कालेज में पढ़ाने की व्यवस्था की। वहाँ वे पढ़ने लगे। उनकी स्मरण शक्ति और विद्या पढ़ने का अनुराग देखकर अध्यापक बहुत खुश हुए। कालेज की एक परीक्षा पास होकर ईश्वर चन्द्र ने पाँच रुपये की छात्रवृत्ति पाई। बड़े उत्साह से वे पढ़ने लगे। दो साल परीक्षा में वे प्रथम निकले। तीसरी बार उन्हें पहली श्रेणी न मिली। इससे उनको बड़ी निराशा हुई। उन्होंने पढ़ाई को

छोड़ने तक का संकल्प किया। लेकिन मित्रों के उपदेश से फिर भी पढ़ने लगे।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में वे "साहित्य" परीक्षा में बैठे। प्रधान अध्यापक ने ईश्वरचन्द्र की अवस्था कम कहकर परीक्षा में बैठने न दिया। निराश होकर वे अध्यापक के पास गये और प्रार्थना की कि मुझे छूट देने की कृपा करें। अध्यापक ने कहा "अरे तू तो बच्चा है। संस्कृत साहित्य के गहन विषयों को तू कैसे समझ सकता है?" आत्माभिमानी ईश्वर ने कहा—आप साहित्य में परीक्षा लेकर मुझे स्वीकार करेंगे तो अच्छा होगा; नहीं तो मुझे ही कालेज छोड़ना पड़ेगा। यह सुनकर अध्यापक जी ने कुछ कठिन पद्यों का अर्थ बताने केलिए कहा। ईश्वर चन्द्र का उत्तर सुनकर वे चकित हुए। उन्हें परीक्षा में बैठने की अनुमति दी गयी। वे परीक्षा में बैठे और पहिली श्रेणी में पास हुए।

उन्हें संस्कृत के काव्य-ग्रन्थ आदि से अन्त तक कण्ठ थे। अनेक संस्कृत-श्लोक उन्हें याद थे। वे संस्कृत-भाषा में लोगों से बातचीत करते थे। उस समय के पण्डित लोग उनकी इस असाधारण शक्ति को देखकर कहते थे—ईश्वरचन्द्र दिव्य बालक है, यह जियेगा तो अद्वितीय पुरुष होगा।

पढ़ते समय उन्हें स्वयं खाना पकाना पड़ता था। सवेरे गंगा-स्नान करके आते समय बाज़ार से तरकारी वग़ैरह ख़रीद लाते थे। तरकारी उन्हें स्वयं साफ़ करनी और काटनी पड़ती थी। अकेले ही खाना पकाकर अपने घर के चार पांच आदमियों को खिलाते और पीछे आप खाते थे। उसके बाद सब बर्तन माँजते थे। फिर कालेज जाते थे। थोड़े ही दिनों में व्याकरण और साहित्य में ईश्वरचन्द्र ने विशेष रूप से विज्ञता प्राप्त कर ली।

चौदह वर्ष की अवस्था में दीनमयी नामक एक कुलीन, संपन्न, गुणवती और रूपवती कन्या के साथ उनका ब्याह हुआ। संस्कृत की ऊँची परीक्षाएँ पास करने के बाद ला-कमेटी की परीक्षा में प्रशंसा के साथ वे पास हुए। उस समय त्रिपुरा राज्य के जज-पण्डित का स्थान खाली हुआ। सरकार ने उस स्थान पर ईश्वरचन्द्र को नियुक्त करना चाहा। किंतु पिता की सलाह से उन्होंने वह स्थान स्वीकार नहीं किया। वे फिर भी पढ़ने लगे। वेदान्त की परीक्षा पास करके न्याय और दर्शन शास्त्र पढ़ना शुरू किया। परीक्षा में प्रथम आने के कारण उनको दो सौ रुपये का पुरस्कार मिला। घर का काम-काज करने का भार उनके ऊपर आ पड़ा। पैसे के अभाव से बड़ी तकलीफ होती थी। तो भी वे हमेशा प्रसन्न रहते थे। कभी उदास नहीं हुए।

देखने में ईश्वरचन्द्र गोरे न थे। किंतु सब लोगों को आकर्षित करने की शक्ति उन में थी। अपने कालेज के अध्यापक उनको पुत्र के समान मानते थे। उनके एक अध्यापक थे, जो बहुत बूढ़े थे। ईश्वरचन्द्र सदा उनकी सेवा में रहते थे। एक दिन अध्यापक ने ईश्वर को बुलाकर कहा—"मेरे प्यारे शिष्य! मैं तुझ से एक बात कहता हूँ। ज़रा सुन, तुझे मालूम है, इस संसार में मेरे और कोई नहीं है। मुझे बड़ा कष्ट होता है। लोगों का कहना है, यदि मैं शादी करूँ तो अच्छा होगा। मेरे कुछ मित्रों के परिश्रम से अच्छे स्वभाव की एक कन्या के साथ, ब्याह करने का निश्चय हो गया है। इस पर तेरी क्या राय है? ईश्वर कुछ देर तक बिना उत्तर दिये, चुप रहे। बार बार पूछने पर उन्होंने यों कहा—"इस बुढ़ापे में फिर ब्याह करना कभी उचित

नहीं । आप के अब अधिक दिन जीने की कोई सम्भावना नहीं है । ब्याह करके आप एक निरपराध बालिका को सदा के लिये दुखिया बनाना चाहते हैं? ब्याह कैसा, ब्याह का विचार भी आप के लिये महा-पाप है" । यह उत्तर सुनकर गुरुजी स्तब्ध रहे । कुछ समय के बाद एक ग़रीब ब्राह्मण की परम-सुन्दरी बालिका के साथ वृद्ध अध्यापक का ब्याह हुआ । यह खबर पाकर ईश्वरचन्द्र को बड़ा दुःख हुआ । उसी दिन से उन्होंने अपने अध्यापक के घर जाना बन्द कर दिया । एक दिन अध्यापक उन्हें अपने घर ले गये और गुरुपत्नी के दर्शन कराये । बालिका को देखकर और उस विवाह के परिणाम को सोचकर ईश्वरचन्द्र की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी । गुरुजी ने जलपान करने के लिए अनुरोध किया । किंतु बिना जलपान किये वे वहा से चले । कुछ दिन क बाद

गुरुपत्नी विधवा बन गयी । इस तरह की अनेक विधवाओं की अवस्था को सुधारने के लिए अपनी बाल्यावस्था से ईश्वरचन्द्र ने क़सम खायी थी। वे हमेशा बाल्य विवाह, वृद्ध विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का उपाय सोचते रहते थे।

वे विद्यासागर की ऊँची पदवी पाने क बाद अंग्रेजी पढ़ने लगे । पढ़ाई के बाद फोर्ट विलियम कालेज में उन्हें एक नौकरी मिली । उस समय उनके पिताजी को दस रुपया वेतन मिलता था। अपने पुत्र के अनुरोध से पिताजी ने नौकरी छोड़ दी । ईश्वर ने हर महीने अपने पिताजी का बीस रुतये देने का वादा किया । नौकरी पाते ही विद्यासागर ने अपने घरवालों के कष्ट दूर करने चाहे । इस से हम समझ सकते हैं कि अपने पिताजी तथा घर के प्रति उनका कितना प्रेम था ।

विद्यासागर जी सवेरे नौ बजे तक अंग्रेज़ी

पढ़ते थे । शाम को हिन्दी पढ़ते थे । अपने कई शिक्षित मित्र संस्कृत पढ़ने के लिए उनके पास आया करते थे । कम समय में वे उन्हें संस्कृत सिखा सकते थे ।

ईश्वर चन्द्र जी जैसे पितृभक्त थे, वैसे ही मातृ-भक्त भी थे । कालेज में काम करते समय माताजी का एक खत उनको मिला । उस में यह लिखा गया था कि "तेरे भाई का व्याह होने-वाला है । एक दिन की छुट्टी लेकर जल्दी घर आ ।" घर जाने को वे तैयार हुए ।

प्रिनसिप्पल से छुट्टी माँगी तो उन्होंने इन-कार कर दिया । उस दिन विद्यासागर को नींद नहीं आयी । अपनी प्यारी माता की आज्ञा का लंघन करना उनके लिए असंभव था । सबेरा होते ही वे प्रिनसिप्पल साहब के पास गये और कहा— "मेरी माता नें मुझे बुलाया है । मुझे घर जाना पड़ेगा । अगर आप छुट्टी नहीं दे सकते हों तो मुझे नौकरी से अलग कर दें ।"

विद्यासागर की मातृभक्ति देखकर वे बहुत खुश हुए और उन्हें छुट्टी दे दी । खुशी खुशी घर की ओर रवाना हुए । वर्षा काल था । पानी बरस रहा था । रास्ते सब खराब हो गये थे । बडा कष्ट झेल कर दामोदर नदी के किनारे पहुँचे । बाढ़ के कारण नदी पार करना कठिन हो गया । घर पहुँचना ज़रूरी था । नाव उस पार थी । ईश्वर पर विश्वास करके वे नदी में कूद पड़े और थोड़े समय म उस पार पहुँचे । बड़े वेग से चलने लगे । रास्ते में और एक नदी मिली । उन्होंने उसे भी तैर कर पार किया । चलते चलते थक गये । शाम को घर पहुँचे । घर में सन्नाटा था । उन्होंने माताजी को पुकारा । शब्द सुनते ही माताजी की जान में जान आयी, मातृभक्त ईश्वरचन्द्र ने माता की आज्ञा का पालन करके ही जल-पान किया । माताजी की आज्ञा का पालन करने के लिये

उन्होंने अपने प्राण को भी तुच्छ समझ कर काम किया। आजकल के शिक्षित लोगों के लिये विद्यासागर का यह काम अनुकरण करने लायक है। प्यारे बच्चो, विद्यासागर की जीवनी से माता-पिता की भक्ति करना सीखो। ऐसे व्यक्ति इस युग में विरले ही मिलेंगे।

संस्कृत कालेज के प्रिन्सिप्पल बनने के बाद विद्यासागर संस्कृत स्कूल के इन्स्पेक्टर बनाये गये। उनके उपदेश के अनुसार कई स्कूल खोले गये। उन्होंने स्कूलों की उन्नति के लिये बहुत से काम किये। माडल स्कूल और बालिका विद्यालय स्थापित किये।

विद्यासागर ने पचास से ऊपर पुस्तकें लिखी हैं। करीब अठारह पुस्तकें संस्कृत की हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी में पाँच ग्रन्थ रचे। विधवा विवाह सम्बन्धी उनकी पुस्तक ने बड़ी प्रसिद्धि पायी है। उन्होंने समाचारपत्रों में भी कई लेख लिखे हैं।

विद्यासागरजी अपनी मृत्यु तक शिक्षा की उन्नति करने में कठिन प्रयत्न करते थे। उन्होंने कई विद्यालयों में लड़कियों को पढ़ाने का प्रबन्ध स्वयं कर दिया। कलकत्ता का बेथून-स्कूल की उन्नति का कारण उनके जैसे महान पुरुषों का अथक यत्न है। कहीं पर जो भी स्त्री-शिक्षा का उद्योग होता था तो वे उसमें अपनी शक्ति के अनुसार सहायता पहुँचाते थे।

लोगों की सेवा ही है अपने जन्म का पवित्र कार्य। इस प्रकार वे समझते थे। ईश्वर दूसरों के लिए अपने प्राण तक देने के लिए तैयार रहते थे। उन्होंने लड़कपन से मरते समय तक रोगियों के पास बैठ कर अनेक रातें बितायी थीं।

सन् १८६७ में पानी न बरसने के कारण बंगाल में बड़ा अकाल पड़ा। अन्न मिलना मुश्किल हो गया। खाने की खोज में लोग इधर उधर भागने लगे। कौन किधर भागता

था, इसका ठिकाना न था । जवान पुरुष बूढे मां–बाप को छोड़कर, माताएँ अपने सुकुमार बच्चों को छोड़कर सब किसी अज्ञात अपरिचित देश को चल दिये थे । चारों ओर हाहाकार सुन पड़ता था । मुट्ठी भर अन्न के लिये स्त्री-पुरुष और बालक वृद्ध जान देने को तैयार थे । कुछ दिन पत्ते खाकर दिन बिताये । अन्त में भूख से तडप तडप कर लोग मरने लगे । उड़ीसा और बंगाल के दक्षिण भाग के लोगों पर भी मुसीबत पड़ी । वे अन्न की खोज में बहुत दूर चले गये । इस दुर्दिन में दानशील ईश्वरचन्द्र अपना सब कुछ त्याग कर लोगों की सेवा करने को आगे बढ़े ।

सब से पहिले उन्होंने सरकार द्वारा लोगों के कष्ट दूर करने की चेष्टा की । कई स्थानों पर अन्न-सत्र खोले गये । वे खुद अपने गाँव गये और दुर्भिक्ष पीडित लोगों के प्राण बचाये ।

नीच जात के अनेक लोगों के सिर पर वे स्वयं तेल लगाते थे और उन्हें खिलाते थे। इस से दीन-दुःखी लोग उन्हें दया का अवतार कहने लगे।

विद्यासागर में स्वार्थपरता ज़रा भी नहीं थी। उन्होंने बिना मांगे ही पचास हज़ार रुपये सूद समेत सरकार को देकर अपना क़र्ज़ा चुकाया। सरकार को मालूम भी न था कि यह रकम विद्यासागर के नाम बाक़ी है या नहीं। सरकार के हिसाब में भी कहीं इन रुपयों का उल्लेख न था। विद्यासागर आप इस क़र्ज को चुका कर अपनी मनुष्यता, न्याय-निष्ठा और लोभहीनता का अत्यन्त श्रेष्ठ उदाहरण छोड़ गये हैं।

विद्यासागर के स्वर्गवास के दो वर्ष पहले उनकी प्यारी स्त्री की मृत्यु हुई। इस घटना से उनको बहुत दुःख हुआ। दिन दिन उनका शरीर कमज़ोर होने लगा। अपने दोस्तों के

सामने वे हमेशा कहा करते थे—"अब क्या है ! अभी प्राण निकल जायँ तो बहुत अच्छा"। एक दिन ज्वर से वे अत्यन्त पीडित हो गये। कुछ दिन शय्या पर पड़े रहे। क्रमशः ज्वर बढ़ने लगा। कुछ दिन के बाद ईश्वर चन्द्र विद्यासागर हमेशा केलिए सो गये।

विद्यासागर की जीवनी से दया, परोपकार, दृढप्रतिज्ञा, स्वाभिमान, स्वावलम्ब आदि सद्गुणों की शिक्षा प्राप्त करके हमको भी अपने चरित्र को ऐसा बनाना चाहिये कि उससे अपना, समाज का, देश का और संसार का उपकार और कल्याण हो।

महाराज पृथ्वीराज

हिन्दुओं के अंतिम सम्राट पृथ्वीराज का नाम संसार भर में प्रसिद्ध है। वे सन् १०५९ ई० में पैदा हुए। उनकी माँ दिल्ली के महाराजा की पुत्री कमलावती थी। पिता अजमेर के महाराजा थे।

पृथ्वीराज ने जब जन्म लिया तब भारत कई छोटे छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। एक एक राजा दूसरे राज्य पर आक्रमण करने का अवसर देखते रहते थे। आपस में तनिक भी मेल न था। सैनिक शिक्षा सब को अनिवार्य रूप से लेनी पड़ती थी। उनका विचार और विश्वास था कि उनका जन्म युद्ध करने केलिए है न कि अपनी प्रजा का पालन करने केलिए।

पृथ्वीराज को भी अपने पिताजी ने छोटी सी अवस्था में तीर चलाना, तलवार चलाना, भाला चलाना आदि अनेक प्रकार की विद्यायें सिखायीं। घोड़े पर सवारी करके युद्ध करने की कला में पृथ्वीराज बड़े प्रवीण निकले। उसके अलावा शब्द वेधी बाण मारना भी उन्होंने बड़ी कुशलता से सीखा। कहा जाता है कि पृथ्वीराज के पहिले राजा दशरथ के अलावा और कोई भी शब्द-वेधी बाण चलाना नहीं जानता था। लेकिन दुःख की बात है कि किताबी शिक्षा में पृथ्वीराज का मन नहीं लगता था।

तेरह वर्ष की अवस्था में पृथ्वीराज शारीरिक शिक्षा में बड़े समर्थ निकले। अपने होनहार बालक को देखकर माँ-बाप की खुशी का ठिकाना न रहा। सब को यह विश्वास हुआ कि एक न एक दिन पृथ्वीराज संसार भर के प्रबल सम्राट बनेंगे।

एक दिन मंडोवर के राजा किसी कारण से अजमेर आये । राजकुमार को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और राजा से कहा कि मैं अपनी कन्या का विवाह राजकुमार पृथ्वीराज के साथ करना चाहता हूँ। राजा ने भी अपनी अनुमति दी ।

कुछ वर्ष के बाद पृथ्वीराज के पिता को यह समाचार मिला—मंडोवर के राजा ने अपनी बेटी की शादी और किसी राजकुमार के साथ करने का निश्चय किया है । तब उनको बड़ा गुस्सा आया और कहा—"मंडोवर के राजा अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध करने जा रहे हैं । यह अच्छा नहीं । इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने हमारा अपमान किया है । इस केलिये उन्हें एक सबक सिखाना चाहिये" तुरन्त अपने पुत्र को बुलाया और सारी बातें समझा देने के बाद मंडोवर पर आक्रमण करने की आज्ञा उन्होंने पृथ्वीराज को दी ।

आज्ञापालक पुत्र ने अपने पूज्य पिताजी की आज्ञा

के अनुसार एक बड़ी सेना सहित मंडोवर पर हमला किया। चार दिन तक दोनों दल भयंकर युद्ध करते रहे। अन्त में पृथ्वीराज विजयी हो गये।

पुत्र की विजय-वार्त्ता सुनकर अजमेर नरेश बहुत खुश हुए। कुछ दिन के बाद मंडोवर नरेश ने एक दूत के द्वारा पृथ्वीराज के पिताजी को यह सन्देश भेजा कि मैं वादे के अनुसार अपनी बेटी का ब्याह आप के सुपुत्र के साथ करना चाहता हूँ। बड़ी धूमधाम से विवाहोत्सब मनाया गया। मंडोवर के राजा पृथ्वीराज के पक्के दोस्त और बन्धु बन गये।

दिल्ली के महाराज अनंगपाल पृथ्वीराज के नाना थे। उनके कोई पुत्र न था। अतः पृथ्वीराज को वे पुत्र के समान मानते थे। कभी कभी पृथ्वीराज दिल्ली में रहा करते थे। उनकी रण-कुशलता और बुद्धिसामर्थ्य देख कर दिल्ली की प्रजा उनको बहुत चाहती थी।

अनंगपाल बूढ़े हो गये। उन्होंने पृथ्वीराज

को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। सब दरबारियों की एक बैठक हुई। उन्होंने उनसे कहा—"प्यारे सज्जनो! हम तुम से एक बात कहना चाहते हैं। हमारा पूरा विश्वास है, आप हमारी बात को मानेंगे। आप को मालूम है, हमारे अन्तिम दिन निकट हैं। हम ने निश्चय कर लिया है कि जीवन के शेष दिन आश्रम में जाकर सुख से काटें। राज्य संभालने का भार मैं पृथ्वीराज को सौंपना चाहता हूँ"। राजा का अन्तिम निर्णय सुनकर दरबारियों ने बड़ी खुशी प्रकट कर दी और पृथ्वीराज के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

एक शुभ अवसर पर बड़े आघोष से पृथ्वीराज सिंहासन पर बिठाये गये और अजमेर नरेश पृथ्वीराज दिल्ली के सम्राट घोषित कर दिये गये।

सम्राट पृथ्वीराज ने आसपास के छोटे २ राज्यों को साम, दान, भेद से अपने राज्य में मिलाया और अपने साम्राज्य को फैलाया। उस समय बहुत

से राजा उनसे जलने लगे। उन में प्रमुख था कनौज का राजा जयश्चन्द्र । उसने काबूल से गोरी को बुलाकर पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के कई उपाय किये । अन्त मे गोरी पृथ्वीराज को क़ैद करके काबूल ले गया और जेल की काल-कोठरी में डाल कर बहुत सी यातनाएँ दीं।

भरे दरबार में शब्द-वेधी बाण चलाकर पृथ्वीराज ने गोरी का काम तमाम करके बदला लिया। आपस की फूट से पृथ्वीराज का साम्राज्य मिट्टी में मिल गया । अतः प्यारे बच्चो! आपस में फूट डालने का कोई काम न करें ।

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई

भारत में कई वीरांगनाओं ने जन्म लिया है और अपने वीर तथा साहसी कार्यों से सारे संसार को चकित करके अपनी अक्षय कीर्ति स्थापित कर गयी हैं। उनमें अग्रगण्य थीं झांसी की महारानी लक्ष्मी बाई। महाराष्ट्र देश में सतारा के समीप कृष्णा नदी के किनारे वाई नामक एक गाँव में ता० २६ नवंबर सन् १८३५ को वीर कन्या लक्ष्मी बाई ने जन्म लिया। पिता मोरोपंत तथा माता भागीरथी बाई कमलवदना अपनी पुत्री को देख कर अतीव प्रसन्न हुई। बच्ची का नाम मनूबाई रखा गया। मनू की तीन साल की उम्र में माता स्वर्ग सिधार गयीं। प्यारी

दुलारी बेटी के पालन करने का भार मोरोपंत पर आ पड़ा। पुत्री का अपूर्व सौन्दर्य देखकर सब उन्हें "छबीली" कह कर पुकारने लगे। बाजीराव पेशवा के घर में उसके दत्तक-पुत्र के साथ मनू ने शारीरिक व्यायाम, युद्ध कला आदि की उपयुक्त शिक्षा प्राप्त की। यही बालकपन की शिक्षा मनू की भावी तेजस्विता और अलौकिक साहस की नींव है। घोड़े पर सवारी करना भी भली-भांति वे जानती थीं। लक्ष्मीबाई चन्द्रकला की तरह बढ़ने लगीं। पिता को पुत्री की शादी के बारे में विचार होने लगा।

ज्योतिषी के कहे अनुसार सन् १८४२ ई० में झांसी के महाराज श्रीमान गंगाधर राव के साथ मनूबाई का विवाह बड़ी घूमधाम से कराया गया। गंगाधर राव जब झांसी का राज्यभार संभालने लगे तब प्रजा की भलाई के लिये आवश्यक कार्य करने की व्यवस्था की। चारों ओर शान्ति दिखाई देने

लगी । अपने राज्य को वैभवसंपन्न करने का अपनी नववधु के साथ उन्होंने जी तोड कर प्रयत्न किया । झांसी में महारानी लक्ष्मी बाई का आना मानों राज्यलक्ष्मी ही का पुनः प्रवेश करना था । राज्य कोष की दशा सुधर जाने पर रत्न-भंडार में पहिले के समान राज्यलक्ष्मी के चिह्न दीख पड़ने लगे ।

दिन बीतने लगे । लक्ष्मी बाई गर्भवती हुई । सन् १८५१ ई० को उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया । लेकिन दुःख की बात है, तीन मास के उपरान्त वह बालक माँ-बाप को दुःख सागर में छोड कर हमेशा के लिए चला गया । पुत्रवियोग से राजा गंगाधर राव का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । पतिदेव की सेवा में लक्ष्मी बाई ने अपना सारा समय लगाया । राजा की इच्छा के अनुसार उन के घर के आनंद राव नामक एक बालक को दत्तक-पुत्र के तौर पर रानी पालती थीं । राजा की बीमारी दिन दिन बढ़ने लगी । पोलिटिकल एजन्ट ने अंग्रेज़ी औषध का सेवन करने पर ज़ोर

दिया। प्राचीन धर्मावलंबी होने के कारण राजा ने अंग्रेज़ डाक्टर की दवा लेने से साफ़ इनकार कर दिया। इसी बीच उन्होंने गवर्णर-जनरल साहब को एक पत्र भेजा जिस में यह लिखा था कि अपने दत्तक-पुत्र पर कृपा दृष्टि रखें और यह भी प्रार्थना की कि दत्तक-पुत्र की बाल्यावस्था में मेरी स्त्री राज्य की प्रबन्ध-कर्त्री (रीजेन्ट) नियुक्त की जावे।

तारीख २१ नवंबर सन् १८५२-को महाराज की बीमारी पूर्वाधिक बढ़ने लगी और उसी दिन राजा को अपना भौतिक शरीर त्यागना पड़ा। रानी के दुःख का वर्णन कौन कर सकता है? बेचारी अठारह वर्ष की उम्र में विधवा हो गयीं! राजा की मृत्यु के बाद लोगों ने समझा कि दत्तक-पुत्र के नाम पर राज्यकार्य चलाने का भार रानी को सौंपा जायगा। क्योंकि पहले ही इसके बारे में ब्रिटिश सरकार से पत्रव्यवहार करके काफ़ी व्यवस्था कर दी थी। किन्तु राणा की स्वर्ग-प्राप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने चुप्पी साध ली।

उस समय गवर्णर जनरल ने एक बिल पास किया था कि जो देशी रियासतें लावारिस होती जायँ वे ब्रिटिश राज्य में शामिल कर ली जाया करें और जिन रियासतों को दत्तक लेने के लिये सरकार की मँजूरी लेनी पड़ती है उनको लावारिस समझ कर ब्रिटिश राज्य में शामिल कर लेना चाहिये।

झांसी राज्य के उत्तराधिकारी के बारे में पोलिटिकल एजन्ट ने गवर्नर जनरल को कई बार खत भेजे। लेकिन कोई जवाब न मिला। अन्त में स्वयं रानी लक्ष्मीबाई ने एजन्ट के द्वारा एक खरीता भेजा। वह भी बेसूद निकला। अच्छा मौका पाकर स्वर्गीय राणा के एक भाई ने एजन्ट को लिखा कि वही राज्य का हकदार है। अतः उसे गद्दी मिलनी चाहिये। कुछ दिनों के बाद गवर्नर जनरल ने भारत के पर-राज्य सचिव के साथ यहीं निश्चय किया कि स्वर्गीय राणा के कोई औरस पुत्र न होने के कारण झांसी राज्य को ब्रिटिश राज्य से मिला लिया जाय।

कहा जाता है कि यह समाचार पाकर रानी बेहोश हुई। पोलिटिकल एजन्ट ने यह दिलासा दिया कि रानी के जीवन-निर्वाह केलिये पाँच हज़ार रुपये दिये जायँगे, रहने केलिये झांसी महल दिया जायगा और रानी के नौकरों पर ब्रिटिश सरकार की अदालत का कोई अधिकार न रहेगा। इसके बाद झांसी राज्य ब्रिटिश राज्य से मिलाया गया। रानी को शहर के बाहर के एक महल में रहना पड़ा। रानी ने नीति स्थापित करने के बहुत से प्रयत्न किये। लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ। अन्त में वे निराश होकर ईश्वरभजन में अपना सारा समय बिताने लगीं। थोड़े समय के भीतर गवर्णर जनरल ने जिस प्रकार झांसी रानी के साथ व्यवहार किया था उसी प्रकार व्यवहार करके सतारा, नागपुर, तंजौर, अवध आदि अनेक छोटी रियासतें ब्रिटिश राज्य से मिलायीं जिस से भारत के सब लोगों को ब्रिटिश सरकार की ओर एक

प्रकार की घृणा होने लगी। उसके अलावा गवर्नर ने हिन्दू-धर्म की जड को उखाड़ने और हिन्दु-शास्त्र का नाश करने का भी यत्न किया।

बाजीराव पेशवा के दत्तकपुत्र नानासाहब को पेशवा के निर्देश के अनुसार पेन्शन देने से ब्रिटिश सरकार ने इनकार कर दिया। इस घटना से नानासाहब बहुत कुपित हुए। यद्यपि उन्होंने इस के बारे में कोर्ट आफ़ डयरक्टेर्स की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजा तोभी उस से कोई लाभ न हुआ। तब निराश होकर उन्होंने कानपुर बलवे में अंग्रज़ों का बड़ी निर्दयता से कत्ल करके बदला लिया। उस समय डलहौज़ी साहब बिलायत गये और केनिंग साहब उनके स्थान पर आ गये।

देश भर में जो असन्तोषाग्नि एक बार लग गयी वह धीरे धीरे सुलगने लगी। उसी समय सरकारी फ़ौज में इस बात की चर्चा फैली कि

कारतुसों में, जिनका काम फ़ौज के हर सिपाही को पड़ता है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, गाय और सुअर की चर्बी लगी हुई है। उन लोगों को सरकार से घृणा करने का एक अच्छा मौका मिल गया। वे इसके विरुद्ध विद्रोह करने लगे। सब से पहिले बंगाल में बरहामपुर १६ वीं काली पलटन ने अपना प्रचंडरूप प्रकट कर दिया। बिजली की गति के समान यह खबर चारों ओर फैलने लगी। मेरठ, फिरोजपुर, बरेली, लखनौ आदि स्थानों में बलवा होने लगा। दिल्ली के बादशाह उनके नेता बने। फिर नाना साहब और अवध के नवाब भी उनके सहायक हुए। झांसी की सेना ने भी यह समाचार सुना। कुछ समय तक वह शान्त रही। तब सेना के नायक डन्लाप ने समझा कि उसके सिपाही ईमानदार हैं, बलवा न करेंगे। लेकिन आशा के विरुद्ध वहाँ भी बलवे के चिह्न दीख पड़ने लगे। सिपाहियों ने स्टार फोर्ट पर धावा किया और अपने अधीन कर लिया। फिर

फ़ौजी अफ़सर कप्तान डन्लाप जैसे मुख्य अंग्रेज़ सेनानियों को सिपाहियों ने मार डाला। उसके बाद जितने अंग्रेज़ लोग थे वे सब बेरहमी से स्त्रियों सहित मार डाले गये। अंग्रेज़ लोगों ने समझा कि इस भयंकर हत्याकाण्ड में रानी लक्ष्मीबाई का भी हाथ है। किन्तु वह सरासर झूठ है। क्योंकि झांसी के कमीशनर गार्टन साहब के प्रार्थनानुसार रानी ने अंग्रेज़ स्त्रियों तथा बच्चों को अपने महल में पनाह दी थी और काफ़ी मदद पहुँचायी थी। उसके लिये कमीशनर साहब का ख़त प्रमाण है।

बागी लोगों ने रानी को भी नहीं छोड़ा। उन्हों ने यह सन्देश भेजा कि यदि हमें तीन लाख रुपये न देंगी तो हम राजमहल को अभी उड़ा देंगे। लाचार होकर रानी को अपने गहने बेचकर एक लाख रुपया देना पड़ा जिससे खुश होकर बागी लोग दिल्ली की ओर रवाना हुए। उस समय राज्य का कार्य

सँभालने को कोई नहीं था। राज्य अनाथ सा हो गया। बड़े सरकारी अफ़सरों की प्रार्थना के अनुसार रानी ने राज्य का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। रानी की अंग्रेज़ों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने की बड़ी इच्छा थी। लेकिन उनके मन्त्री उसकेलिये अनुकूल न थे। उसकी परवाह बिना किये उन्होंने झांसी के हत्याकांड पर खेद प्रकट करते हुए खत भेजा। किन्तु अधिकांश अंग्रेज़ लोंगों ने उस खत पर विश्वास नहीं किया।

उस समय ओरछा नरेश नत्थेखां ने अपनी विराट् सेना लेकर झांसी पर चढाई कर दी। रानी ने ब्रिटिश लोगों की सहायता माँगी। कोई प्रयोजन न हुआ। झांसी प्रान्त के बड़े ठाकुर और बुंदेल जागीरदारों की सहायता से रानी ने धीरतापूर्वक नत्थेखां का सामना किया। रानी स्वयं भी मरदानी पोशाक पहने,

सिर पर साफ़ा बाँधे, कमर में तलवार लटकाये, गले में मोतियों का हार पहने किले के मुख्य बुर्ज पर पहुँचीं और युद्ध करने लगीं। रानी को देखकर सिपाहियों का उत्साह सौगुना बढ़ गया और नत्थेखां की सेना को भगा दिया। अंग्रेज़ों ने यह ख़बर सुनी तो प्रसन्न रहने के बजाय रानी के ऊपर वे अविश्वास करने लगे। उन्होंने यही समझ रखा कि बाग़ियों की मदद करने वालों में रानी का प्रमुख स्थान है।

दस महीने तक रानी ने झांसी का राज्य-भार सँभाला। उस समय प्रजा की भलाई करने के उन्होंने बहुत प्रयत्न किये। शासन की सुव्यवस्था से प्रजा अतीव सन्तुष्ट हो उठी। उनके शासन काल में कोई भी गरीब या भिखारी दुःखी न था

लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ सरकार की ओर से राज्य का प्रबन्ध कर रही थीं। परन्तु उचित समय पर उचित

रीति से सरकार को सारा हाल न समझा देने के कारण अंग्रेज़ अधिकारियों ने समझा कि झांसी के हत्याकाण्ड में रानी का भी हाथ है। अतः एक बड़ी सेना ने सर ह्यूरोज़ जैसे बड़े सेनानियों की मातहती में आकर झांसी को चारों ओर से घेर लिया। सेना शहर के पास पहुँची। तभी रानी समझ सकीं कि अंग्रेज़ सेना उन्हें बागी समझकर कुचलने आती है। तुरन्त सामना करने की व्यवस्था की गयी। पर कुछ विश्वासघाती लोगों ने सारा रहस्य अंग्रेज़ों को जता दिया था। रानी ने एक पत्र भेजकर राव साहब की सहायता मांगी। वे बीस हज़ार सैनिकों को लेकर रानी को मदद देने आये। तात्याटोपे थे प्रधान सेनानी। घमासान लड़ाई छिड़ गयी। तात्याटोपे की सेना ने समझा कि अंग्रेज़ों को हराना आसान है। लेकिन अन्त में उनकी असावधानी से उन्हें हार खानी पड़ी। बहादुर सिपहसालार तात्याटोपे भागकर कालपी

गये और अपने स्वामी पेशवा से सारी बातें कह सुनायीं।

इधर रानी लक्ष्मीबाई पराजय की परवाह बिना किये फिर युद्ध करने की तैयारी करने लगीं। टिड्डी दल के समान अंग्रेज़ सेना ने उसे चारों ओर से घेरा। बारह दिन तक रानी की फ़ौज बराबर युद्ध करती रही। दुर्भाग्यवश गोरी सेना रानी की सेना को हराकर शहर के भीतर आयी। लाचार होकर रानी अपने कुछ ईमानदार साथियों को लेकर अपने किले में लौटीं। लेकिन अंग्रेज़ सेना वहाँ भी आकर किला हस्तगत करने केलिये लडाई करने लगी। शहर में गोरी सेना ने लूट मचाकर लोगों को तकलीफ़ें पहुँचायीं जिसे सुनकर रानी को अत्यन्त दुःख हुआ। वे उसी दिन रात को क़रीब दो सौ आदमियों को साथ ले, अपने प्राणप्रिय दत्तक-पुत्र को अपनी पीठ पर धोती से बांधकर घोड़े पर बैठीं और अपनी प्यारी नगरी को नमस्कार कर कालपी केलिये रवाना हुई।

रानी के भाग जाने का समाचार पाकर सर ह्यूरोज ने उनका पीछा करने को बौकर नामक एक सेनानी को सेना सहित भेजा। वायुवेग से बौकर ने उनका पीछा किया। किन्तु उन्हें न पकड सका। जब रानी के पिताजी दत्तिया पहुँचे तब वहाँ के राजा ने उन्हें पकडकर झांसी भिजवा दिया। उनके वहाँ पहुँचते ही सर ह्यूरोज़ की आज्ञा से वे फांसी पर चढाये गये।

रानी अपनी छोटी सेना के साथ मांडेर नामक एक गाँव में पहुँची कि बौकर सेना सहित वहाँ आकर युद्ध करने लगा। रानी को पकड़ने बौकर साहब अपना घोडा दौडाता हुआ आया। तुरन्त तलवार से वीरांगना रानी ने उसे घायल करके घोडा दौड़ाती हुई कालपी पहुँचीं। रावसाहब ने उनका बड़ा सत्कार किया। सब मिलकर अंग्रेज़ सेना का मुकाबला करने की तैयारी करने लगे। कालपी की ओर गोरी सेना

बढ़ने लगी। छः मील की दूरी पर जाकर सेना ने पडाव डाला। उस सेना का सामना करने के लिये कालपी की सेना मोर्चा जमाये खडी थी। घमासान लड़ाई हुई। उस युद्ध में कालपी की सेना को हार खाकर भागना पड़ा। सर ह्यूरोज़ ने उसका पीछा किया। बची-खुची सेना लेकर राव साहब, पेशवा, महारानी, नवाब आदि प्रमुख लोग कालपी से निकलकर गोपालपुर नामक एक गाँव में पहुँचे। उसके बाद रानी की सलाह के मुताबिक वे सब ग्वालियर गये।

ग्वालियर के नरेश उनकी सहायता करने को तैयार न हुए। इतना ही नहीं, बलवाइयों के खिलाफ़ युद्ध करने का निश्चय भी उन्होंने किया। यदि ग्वालियर नरेश आपस का वैरभाव भूलकर अपने रिस्तेदार रावसाहब तथा रानी की सहायता करते तो परधर्मी विदेशी सरकार अधिक दिन भारत में ठहर न सकती। लेकिन क्या किया जाय? भारत माता के भाग्य में कुछ और ही बदा था।

ग्वालियर सेना से रानी की सेना की मुठभेड हुई। बहुत समय तक दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध करती रहीं। रानी की रणकुशलता तथा पराक्रम देखकर नरेश की सेना दंग रह गयी। नतीजा यह निकला कि अपनी जान बचाने केलिये नरेश को अंग्रेज़ों की शरण लेनी पड़ी। ग्वालियर विजय के बाद राव साहब वहाँ का राजकाज करने लगे। खज़ाने से बहुत से रुपये अपने सिपाहियों को बांट कर दिये। सब लोग बड़े आनन्द से अपने दिन बिताने लगे।

उस समय सर ह्यूरोज़ आराम करने बंबई गये थे। ग्वालियर की पराजय-वार्ता सुनकर उन्होंने एक विराट् सेना लेकर ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया। राव साहब ने समझा कि हम पेशवा बने हैं, आसपास के नरेश हमारी सहायता करेंगे। अतः वे लडाई का सारा भार अपनी "छबीना" को सौंपकर राज्य-कार्य में लग गये। अंग्रेज़ सेना निकट आ गयी। महारानी

ने भी अपने दल के साथ फ़ौजी पोशाक पहन ली और युद्ध-क्षेत्र में उतरीं। रानी की सेना चारों ओर से घिर गयी। अतः उन्होंने युद्ध कर के आत्मत्याग करने की कसम खायी। वे तीन दिन तक तुमुल युद्ध करती रहीं। अन्त में इनेगिने सिपाही बच रहे। दुर्भाग्यवश रानी का घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा। अच्छा मौका पाकर शत्रु सेना बिजली के समान उन पर टूट पड़ी। रानी ने उसकी परवाह बिना किए तलवार से बहुत से शत्रुओं का संहार किया। उनका सारा शरीर क्षतविक्षत हो गया। एक आँख भी नष्ट हो गयी; तब उन्हें मालूम हुआ, बचना असंभव है। अपने एक ईमानदार नौकर को इशारे से बुलाया। झट वह आकर उन्हें एक कुटी में ले गया। उसी समय अपना प्यारा दत्तक-पुत्र भी निकट खडा था। उसे सर्वव्यापी मंगलमय भगवान पर अर्पण करके वीरांगना लक्ष्मीबाई अपना भौतिक शरीर छोड़कर स्वर्ग धाम गयीं।

रानी की मृत्यु का समाचार पाकर दुश्मन लोग कुछ समय तक हक्के-बक्के रह गये। अंग्रेज़ सेनानी सर ह्यूरोज़ ने यों कहा—शत्रुदल की ओर का सब से उत्तम मनुष्य कोई है तो वे झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई हैं। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि यहाँ झांसी रानी जैसी वीरांगनाओं का जन्म होवे जिस से भारत की सुकीर्ति द्वीप-द्वीपान्तरों में फैल जाय।

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-मन्त्री अबुलकलाम आज़ाद का नाम न जाननेवाले भारत में बहुत ही कम हैं। उनके पिताजी मौलाना खैरुद्दीन साहब अरबी भाषा के बड़े विद्वान थे। मक्का, ईरान, टर्की आदि देशों में उन्होंने भ्रमण किया था।

अबुलकलाम का जन्म सन् १८८८ में हुआ। मक्का नगरी थी जन्मभूमि। बचपन से वे बड़े होनहार दिखायी पड़ते थे। कोई भी बात एक बार सुनने पर वे समझ सकते थे और याद कर सकते थे। सबसे पहिले कैरो की यूनिवर्सिटी में वे पढ़ने लगे। उस समय अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने में लोग वर्तमान समय के समान ध्यान नहीं दिया करते थे। लोग अपने अपने देश की भाषा बड़े शौक से पढ़ते थे। अतः मौलाना साहब को भी अंग्रेज़ी

पढ़ने का अवसर नहीं मिला। अरबी और फारसी भाषा में उन्होंने खूब ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन भाषाओं में उनकी विद्वत्ता देख कर उस देश के विद्वान लोग भी दंग रह जाते थे। आपने चौदह वर्ष की उम्र में मुसलमानी धर्म, ग्रन्थ और दर्शन शास्त्र पढ़े। उसके बाद उन्होंने विदेशी राज्यों की सैर की। फिर कलकत्ता आकर वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही वे अख़बारों में लेख लिखने लगे। फिर स्वयं संपादक बन गये। उनकी रचनाशैली देख कर सब उस की तारीफ़ करने लगे। इतनी छोटी उम्र में संपादन-कला इस संसार में उनके अलावा और किसी ने न सीखी है। उनके लेखों को पढ़ कर लोग आनन्द-सागर में डूबते थे।

उनके जन्म के तेरह वर्ष के पहिले अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। मुसलमान लोग उनमें भाग लेने का विचार भी नहीं रखते थे। वे कहा

करते थे—"कांग्रेस हिन्दुओं की है । यदि कांग्रेस विजयी होगी तो मुसलमानों को वह जरूर दबाएगी और कष्ट देगी । अतः अंग्रेज़ी सरकार का साथ देना ही हमारा फ़र्ज़ है" । उसके विरुद्ध जो मुसलमान कांग्रेस में भाग लेते थे वे कट्टर दुश्मन समझे जाते थे । सैयद अमीर अली आदि प्रमुख नेताओं ने मुसलीम जनता को हिन्दुओं के विरुद्ध खडे होने के उपदेश दिये थे ।

अपने लोगों के बीच में इस प्रकार के उपदेशों का प्रचार देख कर मौलाना साहब बहुत दुःखी हुए । उन्होंने समझा "हमारे लोग इस प्रकार करने लगें तो अंग्रेज़ भारत से कभी नहीं जायँगे और हमारा राज्य गुलाम ही रहेगा" । कांग्रेस में मुसलमानों को भर्ती कराने की चिन्ता उनके मन में हमेशा रहती थी । आखिर उन्होंने एक अखबार निकाला । उसमें वे अपने भाइयों को उपदेश देते थे कि "मेरे भाइयो! आप लोग बड़ी संख्या में कांग्रेस में भर्ती हो जाइये । हिन्दुओं के साथ

भाई का सा व्यवहार करें। हमारी प्यारी जन्मभूमि की गुलामी दूर करने के लिये हिन्दुओं के साथ युद्ध क्षेत्र में कूद पड़िये। नहीं तो अंग्रेज़ों को यहाँ से भगाना असंभव होगा।

ये उपदेश सुनकर मुस्लीम जनता सोचने लगी। देश के कोने कोने में मुसलमान लोग मौलाना साहब के उपदेशों के बारे में चर्चा करने लगे। अंत में यह निश्चय किया गया कि मुसलमान लोगों को भी हिन्दुओं से मिलकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध करना चाहिये। मुसलमान लोग झुंड के झुंड कांग्रेस में भर्ती होने लगे।

इसी बीच योरप में महायुद्ध शुरू हुआ। अंग्रेज़ी सरकार को इस में भाग लेना पड़ा। भारत सरकार को भी बलपूर्वक अंग्रेज़ों ने युद्ध में खींच लिया। तब मौलाना साहब अपने अखबार के द्वारा युद्ध के विरुद्ध लेख लिखने लगे।

सरकार इस से क्षुभित हो उठी। उनके पत्र की ज़मानत ज़ब्त कर ली, और दस हज़ार

रुपये की नयी ज़मानत मांगी । ज़मानत न देने के कारण उन्हें अपने प्यारे पत्र को हमेशा केलिए बन्द करना पड़ा ।

मौलाना साहब उदास बैठनेवाले न थे । दूसरा एक पत्र निकाला और सरकार के खिलाफ़ प्रचार करने लगे । तुरन्त सरकार ने आज्ञा दी कि मौलाना बंगाल और उडीसा प्रान्त को छोड़कर कहीं न जायँ । उसके साथ साथ बंगाल सरकार ने बंगाल प्रान्त को छोड़कर और कहीं जाने का हुक्म दिया । लाचार होकर मौलाना उडीसा जाकर रहने लगे । वहाँ के गवर्नर उनके आगमन से बहुत भयभीत हुए । वहाँ से भी मौलाना को भगाने का उपाय बेचारा गवर्नर सोचने लगा । अन्त में उसने उस देश-भक्त को कैद कर लिया । चार वर्ष में उन्हें जेल की काल-कोठरी में रहना पड़ा । महायुद्ध समाप्त हुआ । सब आराम से रहने लगे । उस समय वे जेल से छोड़ दिये गये ।

जेल से आने के बाद दुगुने उत्साह से वे अपनी

माता को मुक्त करने के लिये दिन-रात प्रयत्न करने लगे। उनकी महान सेवाओं से अतीव प्रसन्न होकर भारतीय जनता ने उन्हें कांग्रेस की गद्दी पर बिठाकर उनका आदर किया।

दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। वे अंग्रेज़ों के विरुद्ध पहिले के समान काम करने लगे। इस से सरकार ने फिर उन्हें कैद में रखा। युद्ध के बाद वे छोड़ दिये गये। उनके जैसे सच्चे सीधे ऊँचे ख्याल के महानों के प्रयत्न से भारत माता स्वतन्त्र हो गयी। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। किन्तु भारत दो विभागों में बंट गया। इस से उन्हें बड़ा दुःख हुआ। क्या किया जाय?।

कहा जाता है कि राष्ट्र-पिता पूज्य बापूजी की मृत्यु की ख़बर पाकर वे बहुत रोये। रोने से क्या फ़ायदा? वे अभी महात्मा जी ने जो उपदेश दिये थे उनके अनुसार ही हमेशा काम करते रहते हैं।

महात्मा मार्क्स

संसार में बहुत से बड़े ज्ञानी और हितोपदेशक हुए हैं। लेकिन कार्ल मार्क्स के समान कष्ट झेलनेवाले महात्मा बहुत कम हुए होंगे।

यह ठीक है कि संसार ने महात्माओं को बहुत से कष्ट दिये थे। किन्तु उनमें से किसी को मार्क्स के समान दर दर नहीं भटकना पड़ा था। मार्क्स को दाने दाने केलिये घर घर भीख माँगनी पड़ी। यह मानी हुई बात है कि गरीबी के बराबर दूसरा कोई दुःख नहीं। चाहे जितने ही प्रतिभावान और शक्तिशाली मनुष्य क्यों न हों, गरीबी से वे विवश होते हैं। राणा प्रताप की कहानी देखिये। वज्र समान दृढ मनुष्य प्रताप का हृदय अपनी प्यारी दुलारी बेटी को रोटी के टुकडे के लिये चिल्लाते देख कर अधीर हो उठा और अपने परमशत्रु अक्बर के साथ संधि करने केलिये वे तैयार हो गये।

हृदय को विदीर्ण करनेवाली इस प्रकार की अनेक घटनाएँ मार्क्स के काल में घटी हैं। अचल के समान मार्क्स वे सब सहते रहे। एक दिन उनके बच्चे बीमार पड़े। दवा खरीदने और डाक्टर को बुलाने केलिये उनके पास रुपये कहाँ? उस समय उनको कितना दुःख हुआ उसका अनुमान हम नहीं कर सकते।

कार्ल मार्क्स को साधारण लोगों के समान विश्वास नहीं था कि इहलोक में दुःख झेलूँ तो स्वर्ग में शान्ति मिलेगी। जनता की भलाई केलिये वे सर्वदा यत्न करते थे।

मार्क्स की गृह-जीवन दुखपूर्ण था। एक दिन उनकी स्त्री को एक सहेली ने एक खत लिखा। सारा समाचार लिखने के बाद आगे यह लिखा—"तुम अपने बच्चों को देखने केलिये एक आया को रखो"। उसके जवाब में उनकी स्त्री ने यह लिखा—"मेरी प्यारी सखी, आया को रखने की बात क्या

कहूँ! दूध भी अपने बच्चों को पिलाने में हम असमर्थ हैं। बच्चे मेरे थन का दूध पीते रक्त भी पीने लगे हैं। दूध की कमी से मेरे नन्हे बच्चे बीमार होने लगे हैं। मैं क्या करूँ?"। आगे वे लिखती हैं—"हम घर का किराया भी समय पर नहीं दे सकते। परसों घर का मालिक आया। उसके साथ दो सिपाही भी थे। किराया न देने के कारण हमारे सामान, बिस्तरा, कपड़े आदि सब वे ले गये। बच्चों को सोने के लिये एक खटिया भी उन्होंने न छोडी। खिलौने तक वे ले गये। उस समय खिलौने वापस पाने केलिये मेरी बच्चियाँ ढारें मार कर रोने लगीं। निर्दयी लोगों ने केवल खिलौने दियें ही नहीं, बल्कि गालियाँ भी दीं।

वर्तमान संसार जिन को अभी देवता मानकर पूजा करता आ रहा है उनके घर की दुर्दशा क्या थी, उसकी एक झलक उपरोक्त चिट्ठी से हम समझ सकते हैं। किराया न देने के कारण मार्क्स को

अपना पुराना घर छोड़ना पड़ा। नये घर की खोज में उन्होंने बड़ी मेहनत की। आखिर एक मकान मिल गया। उस में केवल दो कमरे थे। एक कमरा खाना पकाने और दूसरा सोने के लिए वे इस्तेमाल करते थे। एक पलंग पर बैठकर उन्होंने उत्तम ग्रन्थ "केपिटल" लिखा। जब वे पुस्तकें लिखते थे तब चारों ओर बच्चे खेलते थे। सारा स्थल विविध प्रकार के शब्दों से गुंजायमान रहता था। मार्क्स अपनी ग्रन्थ-रचना में इतने डूब रहते थे कि उनको ज़रा भी मालूम न था कि आसपास क्या हो रहा है?

हैदर अली

भारत में हैदरअली का नाम बहुत प्रसिद्ध है। अपने प्रयत्न से हैदरअली मैसूर राज्य के राजा बन गये। उनके पिताजी एक सिपाही थे। पिताजी पैगम्बर मुहम्मद के वंशज थे। उनका नाम फतेहु मुहम्मद था।

हैदर ने सन् १७१७ ई० में जन्म लिया। उनके पूर्वज बागदाद निवासी थे। वहाँ से वे हिन्दुस्तान आये। अजमेर में उन्होंने अपना घर बसाया जब वे गुलबर्गा के स्थान पर रहते थे तब हैदर का जन्म हुआ। अपने सुकुमार बच्चे का सुन्दर मुख देख कर पिताजी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

छोटी सी अवस्था में हैदरअली पुस्तकीय शिक्षा

पा न सके। क्योंकि उनके पिताजी बहुत ग़रीब थे। हैदर ज्यों ज्यों बढ़ने लगे त्यों त्यों उनकी कीर्ति फैलने लगी। उन्होंने अपने समवयस्क कुछ साथियों को बुलाकर एक दल बांधा और मैसूर राज्य में लूट-मार मचाने लगे। युद्धकला में वे बड़े प्रवीण थे। उनकी स्मरणशक्ति देख कर सब दंग रह जाते थे। किसी बात से किसी व्यक्ति से वे कभी न डरते थे।

एक सिपहसालार बनने की इच्छा उनके मन में सदा रहती थी। उनके बारे में, उनकी लूट-मार से तंग आकर लोगों ने राजा से शिकायत की। अन्त में यह निश्चय कर लिया कि उनको भी शाही सेना में भर्ती कर लिया जाय।

सेना में भर्ती होकर हैदर अली बड़े उत्साह के साथ काम करने लगे। काम करने में उनकी होशियारी और कर्तव्य-तत्परता देखकर प्रधानमन्त्री ने उन्हें उन्नत स्थान दिया। एक नेता के सारे

गुण उनमें मौजूद थे। लोगों को पहचानने की उनकी शक्ति तारीफ़ करने लायक़ थी।

अड़तीस वर्ष की अवस्था में एक प्रान्त के गवर्नर का पद उनको दिलाया गया। उस पद पर बैठकर वे अपनी शक्ति को बढ़ाने लगे। उन्होंने विचारा कि एक राज्य में सुसंगठित सेना हो तो कोई भी आसानी से उस राज्य पर हमला करने का साहस न करेगा। अतः अपनी सेना को आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित करना बहुत ज़रूरी है। इस प्रकार मन में विचार कर हैदर अली अपनी सेना को फ्रांसीसी सेनानियों की सलाह से सुसंगठित करने लगे।

उसी समय मैसूर पर हैदराबाद के नवाब ने आक्रमण किया। महाप्रतापी नवाब को खुले मैदान में हराना मैसूर नरेश केलिए असंभव बात थी। क्योंकि उस समय राज्य में विप्लव मचा हुआ था।

लोग अधिकार हस्तगत करने के लिए झगड़ा करते थे। अन्त में लाचार होकर नरेश ने नवाब के साथ सन्धि की। नवाब को बहुत सी अमूल्य वस्तुएँ उपहार के रूप में मिलीं। इस प्रकार वह आफ़त टल गयी कि दूसरी आफ़त राज्य पर पड़ी। अच्छा अवसर पाकर मरहठों ने मैसूर राज्य पर हमला किया। राजा ने उनके साथ भी सुलह की। कुछ ज़िले उनको दिये और पाँच लाख रुपये भी इनाम के तौर पर दिये।

खज़ाना खाली हो गया। ठीक समय पर वेतन न मिलने के कारण सेनाओं में असन्तोष फैल गया। वे विद्रोह करने लगे। प्रधान मन्त्री ने विद्रोह का दमन करने का भार हैदर अली को सौंपा। हैदर ने विद्रोहियों के सरदारों को सेना विभाग से निकाल दिया और बाकी योद्धाओं को वेतन दिया। इस घटना से विद्रोहाग्नि ज़रा

शान्त हुई ।

तुरन्त हैदर अली ने मरहठों पर आक्रमण किया । मरहठों ने जो ज़िले अपने अधीन कर लिये थे उन्हें हैदर ने वापस ले लिया । यह समाचार पाकर राजा बहुत खुश हुए । उसी दिन से हैदर राजा के ईमानदार बन गये । कोई भी काम उनकी सलाह के बिना वे नहीं करते थे । धीरे धीरे वर्तमान प्रधान मन्त्री पर राजा का विश्वास कम होने लगा । कुछ समय के बाद राजा ने प्रधान मन्त्री को हटाकर उस स्थान पर हैदर अली को नियुक्त करना चाहा । हैदर ऐसे एक अवसर की प्रतीक्षा में ही रहते थे । एक दिन प्रधान मन्त्री को उस स्थान से राजा ने हटाया । यह समाचार सुनकर सभासद राजा के विरुद्ध खड़े हुए और खांडेराव नामक एक ब्राह्मण को प्रधान मन्त्री का पद दिलाने के लिए आन्दोलन करने लगे । नतीजा यह निकला कि बड़ा युद्ध हुआ

और लोगों की इच्छा के अनुसार खांडेराव प्रधान-मंत्री बनाये गये ।

कूटनीतिज्ञ हैदर प्रधानमन्त्री का पद पाने के लिये दिन-रात प्रयत्न करने लगे । लोगों को अपने वश में लाने का उपाय करने में ही वे अपना समय बिताते थे । आखिर धोखे से प्रधानमन्त्री को उन्होंने कैद में रखा और खुद प्रधानमन्त्री के पद पर बैठे ।

सब से पहिले लोगों की भलाई केलिये जो जो चाहिये सब हैदर ने कर दिखाये । यद्यपि वे मुसलमान थे तो भी अनेक जीर्ण हिन्दू-मन्दिरों की मरम्मत करायी थी । ऊँचे ऊँचे ओहदों पर हिन्दुओं को नियुक्त करने लगे । ऐसा कोई भी काम वे करने न देते थे जिस में धार्मिक विरोध उत्पन्न हो । सब लोगों को पुत्र के समान समझकर बर्ताव करते थे ।

हैदर अशिक्षित थे । तोभी उन्होंने लोगों

को शिक्षा दीक्षा आदि केलिए अनेक मदरसे खोले। इस प्रकार लोगों केलिये फ़ायदेमन्द कार्य करते देखकर जनता हैदर को प्यार करने लगी। सब उनकी तारीफ़ करने लगे।

उस समय राजा की मृत्यु हुई। हैदर अली ने अपने को राजा घोषित कर दिया और राजसिंहासन पर बैठे। किसी ने भी आपत्ति न की। सब खुशियाँ मनाने लगे।

श्रीसुन्दरविलासगैर्वाणीमुद्रणालयः, अनन्तशयनम्

It is good book

It isgood book

is good book